डॉ. अनिरुद्ध प्रसाद
हिन्दी विभाग
महाराज कालेज, आर.

हिन्दी आलोचना

प्रश्न : हिन्दी आलोचना का उद्भव और विकास पर विचार कीजिए।

उत्तर : 'समीक्षा' और 'आलोचना' एक ही अर्थ में व्यवहृत होते हैं। वस्तु का मूल्यांकन करना मनुष्य की स्वाभाविक वृति है। सौन्दर्यबोध उसका सहज संस्कार। सहज संस्कार से उसके अनुभव रचनात्मक साहित्य के रूप में अभिव्यक्त होते हैं। संस्कार मनुष्य का अनुभूति पक्ष है। स्वाभाविक वृति के कारण ही मनुष्य आलोचना करता है या कहें मूल्य आंकता है। जिस प्रकार अनुभूति का का नियंत्रण बुद्धि करती है वैसे ही आलोचना रचनात्मक साहित्य का नियंत्रण करती है। अतः साहित्यकार अनुभव करता है और आलोचक उसका अनुभावन। फलतः आलोचना हमेशा रचनात्मक साहित्य का अनुसरण करती है। पहले साहित्य का निर्माण होता है, बाद में आलोचना का। पहले वस्तु बाद में मूल्यांकन।

हिन्दी आलोचना संस्कृत साहित्यशास्त्र के समृद्ध परंपरा से अपना अतः संस्कार करती है। संस्कृत साहित्यशास्त्र में तत्वों का सूक्ष्म विश्लेषण मिलता है। वहाँ काव्य की आत्मा से लेकर विभिन्न संप्रदायों की चर्चा होती है अपनी-अपनी रुचि के अनुसार आचार्यों ने 'काव्य की आत्मा' की व्याख्या की है।

यद्यपि संस्कृत साहित्य के सिद्धांत पक्ष का गूढ़ विश्लेषण तो मिलता है, लेकिन उनका विनियोग प्रौढ़ नहीं है। वहाँ सारा कौशल और प्रतिभा सूक्ष्मातिसूक्ष्म विश्लेषण में ही व्यस्थित हुयी है। संभवतः वे विनियोग पद्धति से अपरिचित थे। उनका विनियोग वाला पक्ष लक्षण-लक्ष्य पद्धति तक ही सीमित था। इसलिए संस्कृत में सामर्थ्यवान शास्त्र का निर्माण तो हुआ, पर समीक्षा का निर्माण न हो सका।

हिन्दी साहित्य में भी बहुत दिनों तक संस्कृत वाली समीक्षा पद्धति ही चलती रही। मध्यकाल में भी आलोचना का उद्भव लक्षण और लक्ष्य पर आधारित था। रीतिकाल तक आते-आते आचार्यों ने कोई नई प्रेरणा और दृष्टि नहीं दी, इसलिए भारतीय मेधा का विकास नहीं हो पाया।

P-T-O

भक्तिकाल में केशवदास से पूर्व काव्य रचनाओं में कृपाराम की 'हित तरंगिणी', नंददास की 'रस मंजरी', और रहीम कवि का बरवै नायिका भेद आदि रखे जा सकते हैं। किंतु इसमें भी वही लक्षण-लक्ष्य पद्धति देखने को मिलता है।

रीतिकाल में सिद्धांत स्वीकृति की दृष्टि से दो काव्य सिद्धांत अपेक्षाकृत अधिक स्वीकृत हुए - अलंकार और रस। ध्वनि को भी रीति सिद्ध रचनाओं में काफी स्थान मिला। महाकवि केशवदास अलंकारवादी थे। मतिराम, देव आदि रसवादी आचार्य हुए। इससे इतना हुआ कि हिन्दी में अलंकार और रस पूर्ण प्रतिष्ठा प्राप्त कर सके। बल्कि रीतिकालीन चमत्कार-वादिता के लिए अलंकार ही स्वीकृत हुआ।

सच कहा जाए तो आलोचना का जन्म आधुनिक काल में ही हुआ। जिस प्रकार हिन्दी साहित्य की समीक्षाएँ एवं अन्य विधायें आधुनिक काल में नए-नए रूप में विकसित हुयी, उसी प्रकार आलोचना भी।

समालोचना का उद्देश्य हमारे यहाँ गुण-दोष की विवेचना समझा जाता रहा है। साहित्य में आलोचना का पुराना ढंग यह था कि कोई आचार्य साहित्य मीमांसक जब ग्रंथ लिखता था, तब वह जिन काव्य ग्रंथों को वह उत्कृष्ट समझता था, उन्हें रस, अलंकार आदि के उदाहरणों से उद्धृत करता था और जिन्हें बुरा समझता था उन्हें दोषों के उदाहरण में देता था। इन्हीं दोष और गुणों के आधार पर समीक्षा का कार्य होता था।

हिन्दी साहित्य में आलोचना का सूत्रपात भारतेन्दु हरिश्चंद्र के लेख से हुयी। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लेखों के रूप में पुस्तक की विस्तृत आलोचना अपनी 'आनंद-कादम्बिनी' में की। लाला श्री निवासदास की 'संयोगिता स्वयंवर' नाटक की उन्होंने बड़ी विशद और कड़ी आलोचना की, जिसमें दोषों का उद्घाटन बड़ी बारीकी से किया गया है। पर किसी का गुण-दोष दिखाने के लिए ऐसी पत्रिका भारतेन्दु के समय में नहीं निकली। इसी प्रकार की पहली पुस्तक महावीर प्रसाद द्विवेदी के युग में निकली। इसमें लाला सीताराम, बी० ए० के अनुवाद किए हुए नाटकों के भाषा एवं भाव संबंधी दोषों को विस्तार से बताया गया है। यह अनुवादों की समालोचना थी।

P.T.O

इसके बाद द्विवेदी जी ने कुछ संस्कृत कवियों को लेकर दूसरे ढंग अर्थात विशेषता परिचायक समीक्षाएं निकाली इसमें 'विक्रमांक', 'श्रीचरित', और 'नैषधचरितम्' प्रमुख है। द्विवेदी जी की तीसरी पुस्तक 'कालिदास की निरंकुशता' मे भाषा और व्याकरण के व्यतिक्रम इकट्ठे किए गए जिन्हें संस्कृत के विद्वान लोग कालिदास की कविता बताते हैं। यद्यपि द्विवेदी जी ने हिन्दी के बड़े-बड़े कवियों को लेकर गंभीर साहित्य समीक्षा का ढंग नहीं प्रस्तुत कर सके, पर पुस्तकों की भाषा आदि की खरी-खरी आलोचना करके हिंदी साहित्य पर भारी उपकार किया।

द्विवेदी युग में समालोचना की यद्यपि बहुत कुछ उन्नति हुयी पर उसका रूप प्रायः रूढ़िगत ही रहा। कवि की विशेषताओं का अन्वेषण और उनकी अंतः प्रकृति की छानबीन करने वाली उच्च कोटि की आलोचना का शुभारंभ 'छायावाद' युग में हुआ। सन् 1920 ई० के बाद हिन्दी आलोचना में कई तरह की शाखाएँ देखने को मिलीं।

पहली समीक्षा का पूर्ण पाक आचार्य रामचंद्र शुक्ल के रूप में हुआ। वे सृष्टा भी थे और नियामक भी। उनके पूर्ववर्ती आलोचकों में प्रवृत्तियों के समाहार का ऐसा कोई स्वरूप देखने को नहीं मिलता है। उन्होंने काव्य सिद्धांत का व्यापक आधार निर्मित किया। संस्कृत काव्य शास्त्र और पाश्चात्य साहित्य शास्त्र से पूर्ण परिचय कराके अपनी आलोचना का पक्ष रखा है। उनकी आलोचना की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं —

(1) शुक्ल जी ने रस को काव्यात्मा माना और उनका विशद विश्लेषण किया।

(2) शुक्लजी कविता को जीवन और जगत की अभिव्यक्ति मानते हैं।

(3) काव्य का प्रयोजन हृदय प्रसार है और हृदय की मुक्तावस्था रस दशा है। काव्य का विषय सदा विशेष होता है, सामान्य नहीं। वह व्यक्ति को सामने लाता है, जाति को नहीं। वाच्यार्थ काव्य का होता है, व्यंग्यार्थ या लक्ष्यार्थ नहीं।

(4) मुक्तक की अपेक्षा प्रबंध काव्य अधिक उपयोगी है और जीवन छवियों के लिए उपयुक्त। काव्य में साधनावस्था का महत्व है सिद्धावस्था का नहीं। यही शुक्लजी की समीक्षा सिद्धांत है।

P.T.O

शुक्लजी लोकमंगलवादी थे। इनके समीक्षा सिद्धांत निर्मित नहीं माने जा सकते। प्रबंध काव्य के प्रति इनका विशेष आग्रह था। यही कारण है कि कबीर और छायावादी कवियों का वे सम्यक मूल्यांकन न कर सके। शुक्लजी ने ऐतिहासिक आलोचना को तो जरूर सुव्यवस्थित किया जो उनके 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में दिखलाई पड़ता है। किंतु कविता को आदिवाद से ऊपर उठा न सके। उनके समकालीन आलोचकों में बाबू गुलाब राय, पं विश्वनाथ मिश्र, चंद्रबली पांडेय आदि हैं।

आचार्य शुक्ल की समीक्षा के आगे-पीछे आलोचना का एक और स्वरूप विकसित हो रहा था जो छायावादी साहित्य को एक स्वतंत्र रचना-प्रक्रिया मानकर मूल्यांकन कर रहा था। इस कोटि के आलोचकों में ऐतिहासिक विकास के साथ एक नवीन दृष्टि थी जो काव्य में नवीनता को देखने का आग्रह कर रहे थे। वे इस भ्रांत धारणा का खंडन कर रहे थे कि छायावाद विदेशी शैली की अनुकृति है। इस कोटि के आलोचकों में नंददुलारे वाजपेयी, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, शांतिप्रिय द्विवेदी आदि थे।

छायावाद के बाद प्रगतिवादी दौर में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद को आधार बनाकर साहित्य की रचना की गयी। सन् 1936 के बाद हिन्दी में मार्क्सवादी आलोचना का विकास हुआ। इस कोटि के आलोचकों में शिवदान सिंह चौहान, रामविलास शर्मा, नामवर सिंह, प्रकाशचंद्र गुप्त जैसे समर्थ आलोचक हुए। जिस प्रकार मार्क्सवाद का प्रभाव प्रगतिवाद पर पड़ा उसी प्रकार फ्रायड का प्रभाव उनके अनुयायियों पर पड़ा जो मनोविश्लेषण को साहित्य की कसौटी मानते थे। 1940 ई के आसपास प्रयोगवादी कविता की ओर चली जिसमें मनोविश्लेषणवादी आलोचना की शुरुआत हुयी। इस कोटि के आलोचकों में इलाचंद्र जोशी, अज्ञेय, नलिन विलोचन शर्मा और केसरी कुमार का नाम लिया जा सकता है।

P.G. Semester II
CC-5
"Hindi Alochna Ka Vikas"